अंक : 21

अगस्त, 2026

अनघा..अच्युत...आशुतोष

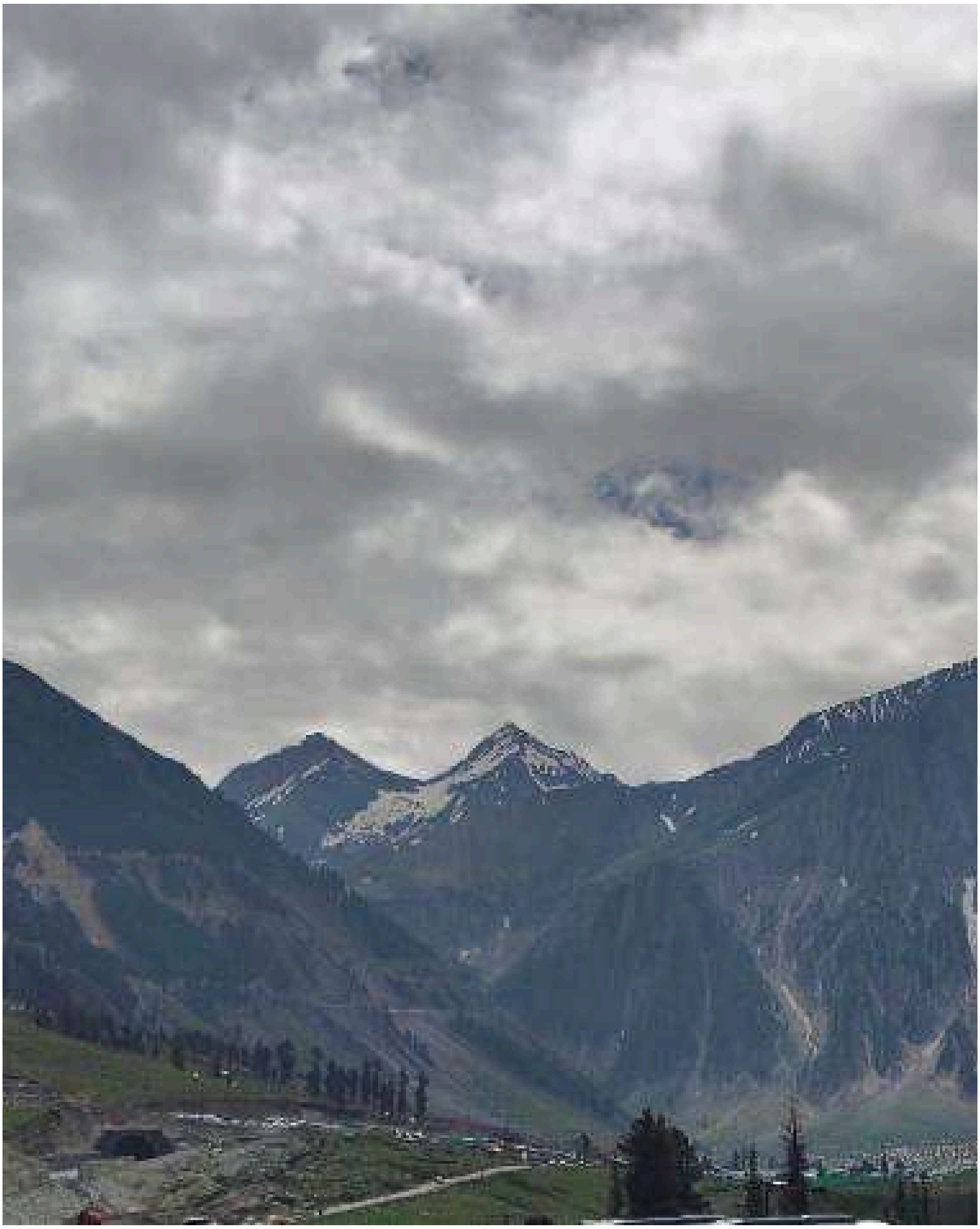

DOI: 10.528/zenodo.11063568

WWW.VITHIKA.ORG

वीथिका ई पत्रिका

साहित्य, कला, संस्कृति, विज्ञान

वीथिका ई पत्रिका

संपादक मंडल

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

चित्रा मोहन
मुख्य सलाहकार संपादक

सुमित उपाध्याय
प्रबंध संपादक

वीथिका परिवार

संरक्षक समिति
डॉ. बिपिन कुमार मिश्र

वरिष्ठ सलाहकार संपादक
डॉ. आशुतोष तिवारी

वरिष्ठ सह संपादक
डॉ. सुधांशु लाल

वेब डिज़ाइन
रोशन भारती

प्रकाशक
उज्ज्वल उपाध्याय
यशिका फाउंडेशन, मऊ

संपादकीय समिति

डॉ अरुण कुमार सिंह
डॉ धनञ्जय शर्मा
श्री मनोज कुमार सिंह
एड. सत्यप्रकाश सिंह
श्री बृजेश गिरि
श्री नन्दलाल शर्मा

कवर पेज संपादक
अर्चिता उपाध्याय

कार्टून संपादक
कृतिका सिंह

सलाहकार परिषद
डॉ अखिलेश पाण्डेय
डॉ शिवमूरत यादव

UDYAM-UP 55 0010534

vithikaportal@gmail.com

www.vithika.org

वीथिका ई -पत्रिका

पत्रिका में छपे सभी लेख लेखक के अपने विचार हैं

अंक: 21

वीथिका ई पत्रिका

अगस्त, 2026

विषय सूची :

गलियों की बात 04

भगवान शिव: एक कथा, अनंत संदेश: आनंद विक्रम सिंह 05

महादेव के द्वार : आदित्य वर्मा 10

प्रेमचंद के नाटक : डॉ. लवलेश दत्त 11

स्त्री के प्रति अपराध रुकते क्यों नहीं : शीला पाण्डेय 16

कला वीथी : संजय राय 19

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बालिका शिक्षा एवं महिला स्वावलंबन : डॉ. स्नेह सुधा 20

चित भूमियाँ : विवेक मिश्रा 23

पुस्तक समीक्षा ; आरती चौरसिया 24
“प. राधेश्याम कथावाचक के सृजन में सम्वाद-सम्प्रेषण”

झाल कोफ्ता : अश्विनी तिवारी 28

सोंधी मिट्टी 30
राजकुमार कौंडल, डॉ जियाउर रहमान जाफरी, घनश्याम कुमार ‘पलामू’, सतीश चन्द्र श्रीवास्तव, सुजीत कुमार राय

कृतिका के कार्टून : कृतिका सिंह 35

Visit

WWW.VITHIKA.ORG

to download this current issue to your tablet

वीथिका ई पत्रिका

गलियों की बात

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

ऐसा कहा जाता है कि समुद्र मंथन में चौदह रत्न सावन मास में ही निकले थे। शिव ने विश्व कल्याण हेतु जिससे इस मंथन से निकला विष पी लिया था तब विष की ऊष्मा को समाप्त करने के लिए माता तारा ने अपना दूध इनको पिलाया तथा तभी से शिव को दूध तथा जलाभिषेक की परम्परा सावन में चल पड़ी। अत: सावन को शब्दों में परिभाषित करना तो असंभव है किन्तु सरल अर्थों में देखें तो सावन अध्यात्म प्रकृति तथा मानवता का संगम है। यह महीना हमें अम्बर का धरती में बादल द्वारा बारिश की बूंद बनकर समर्पण सिखलाता है। । महिलाएं जब कजरी गीत के माध्यम से झूला-झूलकर पीहर को याद करती हैं तथा तीज, रक्षाबंधन, सोमवारी व्रत के जरिए भाई, पति, परिवार के कल्याण में पूरे महीने लग जाती हैं तो अहो! इस सौन्दर्य के क्या ही कहने। ये सारे पवित्र अनुष्ठान सावन में ही होते हें। पुरुष भी कांवड़ के साथ -साथ जलाभिषेक, रुद्राभिषेक करवाकर परंपराओं को मजबूत बनाते हैं। अर्थात कभी प्रेम से, कहीं भक्ति से तो कहीं भाव से डूबना ही तो सावन है। सावन अच्युत है क्योंकि इस मास में हम शिव के प्रति अपनी निष्ठां से विचलित नहीं होते। अनघा है क्योंकि सावन हमारे अन्त:करण को परिष्कृत और पवित्र करता है। सावन में बारिश बाहर की गन्दगी धोती है, जल से मिट्टी को नवीन कर नये फसल के लिए तैयार करती है। सावन आशुतोष है क्योंकि शीघ्र प्रसन्न होने वाले देवो के देव महादेव केवल आडम्बर रहित होने की ही राह दिखाते हैं ।

Archana

अगस्त
2026

भगवान शिव:
एक कथा, अनंत संदेश

आनंद विक्रम सिंह
युवा स्तम्भकार
मऊ, उत्तर प्रदेश

हर हर महादेव

सावन की पहली सुबह थी। पहाड़ धुंध में लिपटे, पेड़ों की पत्तियों पर ओस की बूँदें कानों में झुनझुना बजा रहीं थीं। । काले घने बादलों से ढ़की आकाश की चादर के नीचे पहाड़, वन, नदियाँ—प्रकृति में सौंदर्य की छटा बिखर गई थी। गंगा की कल-कल धारा नीचे उतरते हुए हिमालय के शांत शिखरों पर छाया के बीच पसर रही थी। हर किसी की जिह्वा पर बस एक ही नाम था - महादेव।

वही महादेव, जो कैलाश पर्वत की चोटी पर, भस्म लगाए, जटाओं में गंगा को धारण किए, गले में सर्प, हाथ में त्रिशूल और डमरू लिए समाधिस्थ बैठे थे। कहा जाता है, जब-जब सृष्टि में उथल-पुथल मचती, तब-तब महादेव अपनी तीसरी आँख खोलकर नया संतुलन स्थापित करते हैं ।

जटाटवीगलज्जल प्रवाह पावितस्थले ।
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम् ॥

जब इस सृष्टि में कुछ भी न था, बस गहन अंधकार फैला था, तभी उस मौन में एक कंपन उठा—ध्यानमग्न शिव प्रकट हुए। उनके नृत्य, उनके तांडव से ही ब्रह्मांड की गूंज शुरू हुई। तुम जिस क्षण सृष्टि के नियमों में कोई नया बदलाव महसूस करो, समझ जाना वह शिव के तांडव का प्रभाव है। शिव के बारे में अनेक कथा-परंपराएँ प्रचलित हैं,

जिनमें कोई न तो शुरुआत का पता लगा पाया, न तो अंत का। एक बार की बात है, देवों और असुरों के बीच महासंग्राम छिड़ा था कि कौन जगत का स्वामी बनेगा।
सभी ने ब्रह्मा और विष्णु की ओर देखा पर समस्या का हल नहीं मिला। तभी त्रिलोक में गूंज उठी एक रहस्यमयी घंटी—डमरू की आवाज़, जिसकी गूंज से ब्रह्मांड कांप उठा। उस समय सृष्टि के जन्मदाता, पालनकर्ता और संहारकर्ता एक साथ, एक स्वरूप में प्रकट हुए, और वे थे शिव—भस्म से ढ़की देह, जटाओं में गंगा, गले में नाग, और पास बैठा नंदी । उनकी आँखों में वैराग्य था, मन में करुणा, हाथ में शक्ति और वाणी में ज्ञान। वे न नगर के थे, न वन के; वे सबके थे और किसी के नहीं भी। उनके प्रति प्रेम में राजा भी नतमस्तक होते और दरिद्र भी। महादेव अपने जीवन में सादगी को सर्वोच्च मानते हैं। जो उन्हें बुलाता, वे उसके प्रार्थना में अवश्य आविर्भूत होते, फिर चाहे वह भूख से अकुलाया कोई किसान हो, या माँ के आँचल में झूलता कोई मासूम। एक बार माँ पार्वती ने उनसे पूछा, "प्रभु, संसार आपको आदिदेव क्यों कहता है? आप तो सबकी तरह दिखते हैं!" महादेव मुस्कराए, और शांत स्वर में बोले, "क्योंकि मैं जिस रूप में पुकारा गया, उसी में उतर गया—वृक्ष, पर्वत, जल, अग्नि, भूत, पशु, देव, और मनुष्य। मेरी महत्ता मेरे त्याग, प्रेम और लोक-कल्याण में है, न कि भव्यता में।"
समुद्र मंथन का समय हो या कामदेव का दहन, भगवान शिव ने हमेशा लोक-हित को सर्वोपरि रखा। जब समुद्र मंथन में कालकूट विष निकला तो तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। न राजा, न देवता, न ऋषि- कोई भी उसका सामना करने को आगे नहीं बढ़ा।

तब आये महादेव; उन्होंने सारा विष पीकर अपनी हल्की सी मुस्कान में समेट लिया। उनका गला नीला हो गया और वे "नीलकंठ" कहलाये। यहीं से नेतृत्व का सबसे बड़ा गुण उभरता है—जो सबसे मुश्किल समस्या स्वीकार करे, अपनों की खातिर सबसे बड़ी जिम्मेदारी उठाए—चाहे कोई उसे सराहे या न सराहे।' आज की दुनिया में, जो संस्थान, समाज या परिवार— कठिन समय में साथ खड़ा हो, असली नेतृत्व वही है।
महादेव का परिवार भी अद्भुत है। माता-पार्वती, पुत्र गणेश और कार्तिकेय, नंदी, यहाँ तक कि नागराज व भूत—सभी ने शिव को अपना बनाया। पार्वती, जिन्होंने हिमालय की बेटी होकर भी केवल शिव को पाने के लिये कठिन तपस्या की; गणेश, जो अपने सिर का बलिदान देकर नयी चेतना और बुद्धि का प्रतीक बने; कार्तिकेय, जो युद्ध-कला और साहस का प्रतिनिधित्व करते थे। यह परिवार विविधता, प्रेम, आपसी समझ और सामंजस्य का परिचायक है—बिल्कुल आज के दौर के संयुक्त परिवार की तरह, जहाँ हम अहंकार, भिन्नता, या द्वंद्व से ऊपर उठकर एक-दूसरे के पूरक बन सकते हैं। यह विविधता भी संदेश देती है कि रिश्ता हो या समाज, जहाँ भिन्नताएँ हों वहीं असली सुंदरता है—कोई छोटा-बड़ा नहीं, कोई अपना-पराया नहीं।
एक बार ब्रह्माजी की सभा में दक्ष ने सती का विवाह तय किया और लड़की की पसंद से अनजान, निर्णय सुना डाला। सती के लिए शिव अधिसारथ थे—बावली सी लगन और निस्वार्थ प्रेम। दुनियावी लोग शिव को अजीब सरीखा अहेर, निर्वस्त्र, भूतनाथ और

जटाधारी मानते थे। लेकिन सती की श्रद्धा देखो, शिव को पाने के लिए उन्होंने पर्वत-शिखरों पर कठोर साधना की और अंततः शिव ने उनका समर्पण स्वीकारा। पर कहानी इतनी सीधी नहीं थी... एक दिन दक्ष ने भव्य यज्ञ किया, उसमें जानबूझकर शिव को नहीं बुलाया। सती, जिसने अपने पिता के द्वारा अपने पति के तिरस्कार को देखा, शिव के मान के लिए यज्ञ-कुंड में कूदकर प्राण त्याग दिए। इस अग्नि में छिपा सबक समझो—'कभी भी रिश्तों में सम्मान और समझौते के बिना, केवल सामाजिक दिखावे के लिए जीना ठीक नहीं।' रिश्तों में आत्म-सम्मान, और प्रेम दोनों जरूरी हैं। सती के जाने के बाद शिव टूट गए, पर भाग्य और जिम्मेदारी ने उन्हें संवारा। वे योगी बन बैठे हिमालय की कंदराओं में। यह वही लोक है, जिसमें आज युवा तमाम मुश्किलों को देखकर हार मान लेते हैं—लेकिन शिव ने तपस्या के जरिए खुद को फिर से खड़ा किया। पार्वती, जो मां शक्ति का अवतार थीं, खुद साधना के मार्ग पर निकलीं; वर्षों की कठिन तपस्या के बाद शिव ने उन्हें स्वीकारा—यह सिखाता है कि जीवन में धैर्य और लगन से ही लक्ष्य मिलते हैं।

प्रकृति ने चाहा कि शिव पार्वती से विवाह करें... कामदेव को भेजा गया पर समाधिनिष्ठ शिव ने ध्यान भंग पर अपनी तीसरी आंख खोल दी। कामदेव भस्म हो गया। लेकिन जब रति रोई, तो शिव ने उसे अमूर्त रूप में लौटा दिया।

ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभा ।
निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिंपनायकम् ॥

'तो क्या सिखाता है यह?—युवाओं को खासकर, कि चाहतें बड़ी हैं, लेकिन आत्मसंयम, धैर्य और अपने लक्ष्य के प्रति वफादारी सबसे कीमती पूंजी है। असली सफलता संयम में है।' शिव केवल मानव जाति के ही देव नहीं हैं। उनके डमरू की आवाज़ में पूरा ब्रह्मांड थिरकता है। वे नटराज हैं—सृष्टि का चक्र उनके तांडव, लय और मूर्छना में चलता है।

डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं ।
चकार चण्ड ताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥

जब शिव तांडव करते हैं, तो विनाश के साथ नये निर्माण की नींव पड़ती है। उनका यह रूप बताता है कि सृजन और संहार साथ-साथ ही चलते हैं; विनाश भी सृजन के लिए आवश्यक है। जिस तरह पुराने विचारों को त्यागे बिना नयी सोच का जन्म नहीं होता, वैसे ही पुराने की विदाई से ही नये युग का आरोहण होता है। जब बुरा समय आये, जब दुनिया रुढ़िवाद या अन्याय से जकड़ी हो, तब परिवर्तन जरूरी है। शिव ने जब तांडव किया, तब संहार हुआ—जर्जर व्यवस्था टूटी, नई शुरुआत हुई। 'आज के समय में जब जड़ सोच, रुढ़िवाद, भ्रष्टाचार या ग़लत परंपराएँ रास्ता रोकती हैं, तब शिव-शक्ति जैसी नई चेतना जन्म ले, तभी समाज आगे बढ़ता है।' एक और विशेषता है शिव में—योग और ध्यान। वे आदियोगी कहलाये, क्योंकि उन्होंने ताजिंदगी भोग और योग, दोनों में संतुलन बनाए रखा। हिमालय की पहाड़ियों पर वे लम्बे समय तक ध्यानमग्न रहते; उनकी समाधि बताती है कि भीतर की यात्रा बाहरी सफलता से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। आज के तनाव, अशांति और मानसिक दौड़-भाग में उनकी साधना हम सबके लिए जीवन का अमृत बन सकती है—जहाँ कुछ पल स्वयं को जानना, अपने भीतर उतरना, और बाहरी संसार की हलचल से परे उस परमशक्ति से जोड़ना ही असली शक्ति है।

एक दिन मां पार्वती बोलीं, "प्रभु, आप क्यों अकेले पूजे जाते हैं?" शिव ने मुस्कराकर अपनी आधी देह पार्वती को दे दी— अर्धनारीश्वर ! आज आपसी सहयोग, लिंग-समानता, महिला-सशक्तिकरण सब पर चर्चा होती है—शिव ने तो हजारों साल पहले ही बता दिया कि बिना दोनों के कोई सृष्टि नहीं।' शिव का यह रूप सबसे अद्भुत है— जिसमें वे आधे पुरुष, आधे स्त्री, आधे शिव, आधी शक्ति हैं। यह सृष्टि के प्रत्येक पहलू में सामंजस्य का संदेश है। शिव-कथा हमें सिखाती है कि नर और नारी, यथार्थ और भाव, कठोरता और कोमलता—सब प्रकृति के दो पहलू हैं, जिन्हें एक साथ स्वीकार कर हम संतुलित और पूर्ण हो सकते हैं। ऐसी समता आज के समाज में, जहाँ विविधताओं का आदर और सहयोग न हो, कल्पना ही रह जाएगा। आज भी, जब गाँव के मंदिर में घनघोर सावन की रिमझिम में शिवलिंग पर बेल-पत्र अर्पित होते हैं, ओम् नमः शिवाय की ध्वनि गूँजती है और हर भक्त क्षणभर के लिए भौतिक चिंता और परेशानियों को भूल जाता है, तभी समझ आता है कि शिव केवल संतुलन के, त्याग के, या शक्ति के नहीं, बल्कि सहजता के, मानवता के, और जीवन में उठती हर थकान के परम स्रोत हैं।

समय बदला, युग बदले, पर महादेव के प्रतीक कभी पुराने नहीं पड़े। आज भी विज्ञान-प्रगति के युग में जब मनुष्य तनाव, असंतुलन, और भौतिक दिखावे में घिर जाता है, तो शिव की परंपरा, उनका योग, उनका ध्यान, और उनका सहज, सरल स्वभाव नई राह दिखाता है। उनकी कथा सिखाती है कि शक्ति तभी सार्थक है, जब उसके साथ करुणा और विवेक भी जुड़े। शिव ने जीवन को भयंकर चुनौतियों में भी कभी नहीं छोड़ा।

वे सबका सहारा बने— चाहे डाकू हो या गरीब, धनी हो या निर्धन, विधर्मी हो या भक्त, सबके लिए उनके द्वार खुले हैं। यहीं उनका सबसे सुंदर रूप है—भोलेनाथ।शिव थोड़ी सी भक्ति से तुरंत प्रसन्न होते हैं। कोई भी जाति-धर्म, अकिंचन-अमीर-ग़रीब हो—हर किसी के लिए शिव घर हैं। वे सिखाते हैं कि भेदभाव, अहंकार और द्वेष छोड़कर अपनेपन और करुणा से समाज सशक्त बनता है।

महेश्वराय वन्दनं सदा शिवाय मीढुषे ।
भवोद्भवाय भूतये भवाय नाथ ते नमः ॥

महादेव के पर्व, जयकारे और आराधना केवल परंपरा या अनुष्ठान नहीं, बल्कि भीतर जन्म लेने वाले विषाद और भय का नाश करने का, खुद में नए उत्साह पैदा करने का, परिवार और समाज में सामंजस्य का और प्रकृति के प्रति नये समर्पण का प्रतीक है। वो कोई राजा नहीं , न सेना, न महल। उनकी संपत्ति है बस हिमालय, नदियाँ, जंगल, और वह नंदी जिसकी वफादारी आज तक मिसाल है। आज जब दुनिया भाग रही है, हर कोई 'अधिक' चाहता है... पर शिव सिखाते हैं—सरल रहना, संतुलित रहना, और भीतर का आनंद खोजना सबसे जरूरी है।

अंत में, जीवन में चाहे कितनी भी विषमताएँ हों, विष घाटियों को गले लगाना, और प्रत्येक कठिनाई में मुस्कराकर आगे बढ़ना ही शिवत्व है। शिव अपने भीतर भावनाओं के महासागर के साथ मनुष्य होने का अर्थ भी बताते हैं—जहाँ हर अनुभव पूज्य है, सभी रिश्ते पोषक हैं, और हर दृष्टिकोण स्वीकार्य है।

शिव की कथा केवल देवत्व की कहानी नहीं, बल्कि जीने की, सीखने की, समाज गढ़ने की कला है।
जीवन में संकट आये, शिव की तरह जिम्मेदारी उठाओ। मन में ईर्ष्या या द्वेष फूटे, शिव की तरह सबको गले लगाओ। जब कभी मन भटके, शिव के जैसे ध्यान लगाओ। यदि तुम्हें लगे कि लोक कल्याण हेतु अब बदलाव लाना आवश्यक है, तांडव करो, सुधार करो। इस विविधता से भरे संसार को शिव परिवार की तरह सुंदर मानो। सबसे अधिक आवश्यक, किसी की भी मदद करने का मौका ना छोड़ो। सावन की हर बूँद में, नादारंग में, मंदिर के घंटे में, भक्त के स्वेद में, और भक्ति के आंसू में—कहीं न कहीं शिव ही बसे हैं।

अद्भुत, अद्वितीय, अनंत—महादेव!

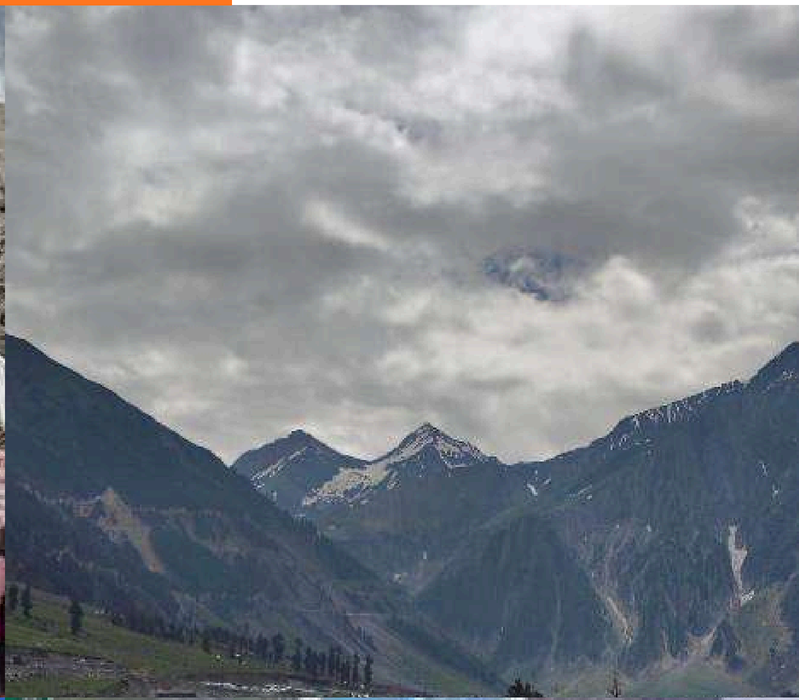

अमरनाथ यात्री
आदित्य वर्मा

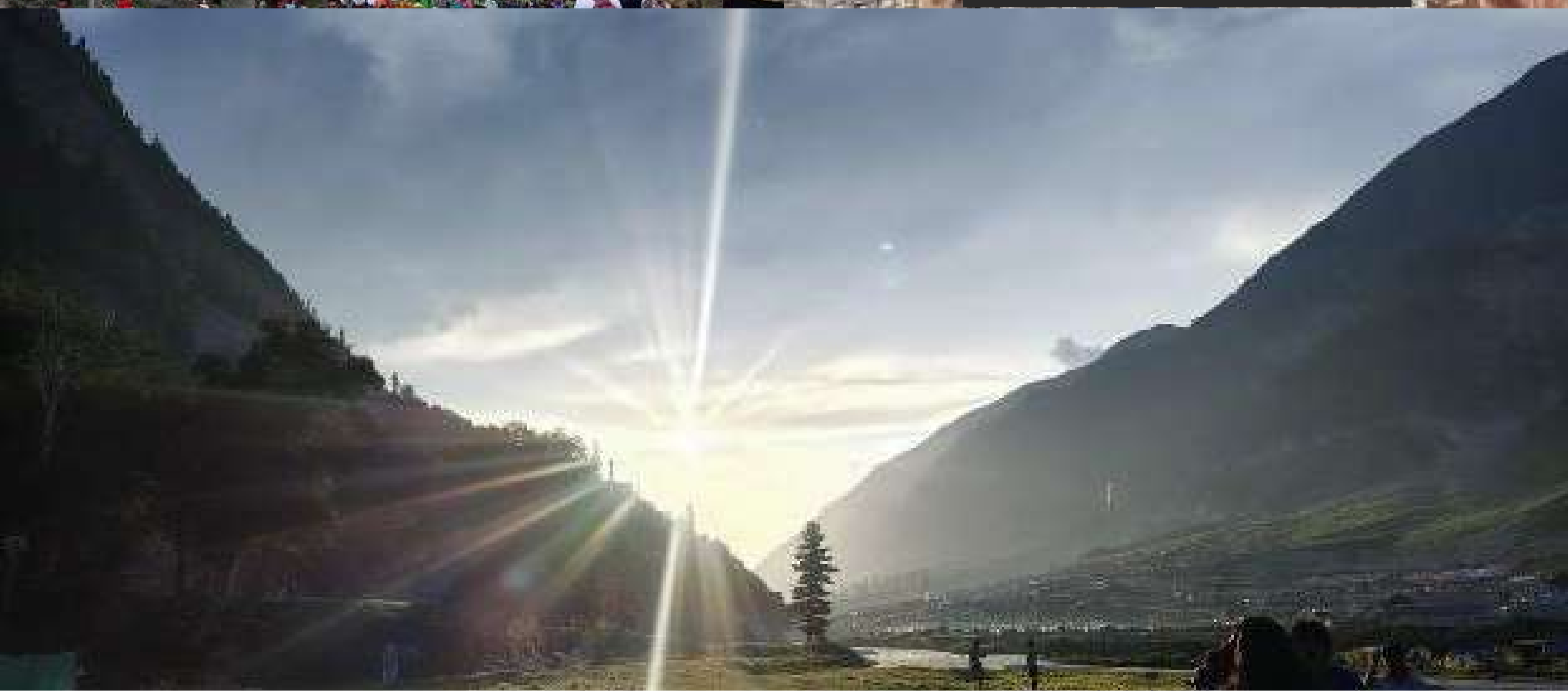

प्रेमचंद के नाटक : एक परिचय

डॉ. लवलेश दत्त
बरेली, उतर प्रदेश

सच्चा साहित्यकार अपनी प्रतिभा को विधा विशेष में बाँधकर नहीं रखना चाहता। इसलिए वह प्रत्येक विधा में अपनी लेखनी चलाता है। यह अलग बात है कि साहित्यालोचक उसे किसी एक विधा के आधार पर ही उसे आँकने लगते हैं और उसके रचनाकर्म पर अपनी प्रतिक्रिया देते है। उदाहरण के लिए तुलसीदास ने रामचरित मानस के अतिरिक्त अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया किन्तु उनकी ख्याति रामचरितमानस के प्रणेता के रूप में ही की जाती है। जयशंकर प्रसाद को महाकवि माना जाता है जबकि उन्होंने उत्कृष्ट नाटक, कहानियाँ और निबंध भी लिखे हैं। हरिवंशराय ‘बच्चन’, सुमित्रानन्दन पंत, उपेन्द्रनाथ ‘अश्क़’, ‘दिनकर’ आदि न जाने कितने ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने हिन्दी की प्रायः सभी प्रचलित विधाओं में लिखा है किन्तु उनकी ख्याति किसी एक विधा के साथ बंधकर रह गयी। इसी प्रकार कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद को महान कथाशिल्पी के रूप में जाना जाता है। जबकि उन्होंने कहानी और उपन्यासों के अतिरिक्त निबंध, समीक्षा, अनुवाद, बालसाहित्य, पत्रकारिता आदि अनेक विधाओं में अपनी प्रतिभा का का प्रदर्शन किया है। हिन्दी नाट्य जगत में प्रेमचंद का कोई उल्लेख नहीं किया जाता, बल्कि शायद ही कोई जानता होगा कि प्रेमचंद ने नाटक भी लिखे थे।

प्रेमचंद उपन्यास सम्राट हैं। उन्होंने तीन सौ से अधिक कहानियाँ और तेरह उपन्यास लिखे हैं। 'काव्येषु नाटकं रम्यम्'—काव्य की समस्त विधाओं में सर्वाधिक रम्य नाटक है, सो हर कवि-कथाकार नाटक भी लिखना चाहता है। कथाकार के रूप मे विख्यात् हो जाने के बावजूद प्रेमचंद का मन नाटक लिखने के लिए बेचैन था। उनके समय में, साहित्य और समाज में रंगमंच शिखर पर था। पारसी रंगमंच के साथ ही हिन्दी नाटकों की भी धूम मची हुई थी। उसी समय में प्रेमचंद ने अपने एक मित्र को पत्र द्वारा सूचित किया था कि वे स्वयं एक ड्रामा लिखने की कोशिश कर रहे हैं। प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' में लिखा है, "यह उनका नाटक 'संग्राम' था, जो शायद पहली बड़ी रचना थी, जो पहले हिन्दी में लिखी जा रही थी। यह नाटक असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि में रचा या लिखा है, और वही समस्याएँ इसमें चित्रित हैं।" निःसंदेह नाटक लिखना आसान नहीं है, पर उन्हें लगा था कि जो बात वह कहना चाह रहे हैं, उसके लिए उपन्यास की अपेक्षा नाटक श्रेष्ठ विधा है।

प्रेमचंद ने अपने जीवनकाल में कुल पाँच नाटक लिखे। रोचक तथ्य यह है कि प्रेमचंद ने लेखन का आरंभ नाटक से ही किया था। यह नाटक उन्होंने रिश्ते के अपने एक मामा के जीवन की घटना से प्रेरित होकर एक कापी में लिखा था किन्तु जब वह कापी मामा के सामने पड़ी तो उन्होंने उसे नष्ट कर दिया। प्रेमचंद की दूसरी रचना भी एक नाटक ही थी जिसका नाम था— 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' यह नाटक एक आत्मकथात्मक था, पर पहले की भाँति यह भी अनुपलब्ध है। प्रेमचंद के पुस्तकाकार प्रकाशित नाटक तीन हैं—1. संग्राम(1922), 2. कर्बला(1924), 3. प्रेम की वेदी(1933)। प्रेमचंद के तीनों नाटकों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

'संग्राम' प्रेमचंद के नाटककार रूप का प्रथम सोपान है। इसे प्रेमचंद का प्रतिनिधि नाटक भी माना गया है। नाटक का कथानक ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित है। मधुवन गाँव का किसान ज़मींदार सबल सिंह से दो सौ रुपये कर्ज़ लेता है। ज़मींदार प्रगतिशील, उदार, धर्मपरायण और आदर्शवादी है। किसानों के प्रति उसका व्यवहार शिष्ट और शालीन है, पर हलधर की रूपवती पत्नी राजेश्वरी को देखकर वह कामासक्त हो जाता है और षड्यंत्रपूर्वक हलधर को हिरासत में डलवा देता है। राजेश्वरी को ज़मींदार की वास्तविकता पता चल जाती है तो वह योजनापूर्वक सबल सिंह के घर मिलने जाती है। राजेश्वरी के प्रणय प्रलाप में फँसा ज़मींदार उसे शहर मेंघर लेकर छिपा लेता है। ज़मींदार के भाई कंचन सिंह को पता चलता है तो वह छिपकर राजेश्वरी से मिलता है। राजेश्वरी सबल सिंह का सर्वनाश करने के प्रयोजन से कंचन सिंह का आश्रय लेती है। गाँव में एक भ्रष्ट योगी चेतनादास ज़मींदार की पत्नी का यौनशोषण करता है। जेस से छूटा हलधर ज़मींदार के प्राणों का ग्राहक बना जाता है, और सबल सिंह व कंचन सिंह भी एक दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। घटनाएँ कुछ ऐसे नाटकीय मोड़ लेती हैं कि डाकू बन चुका हलधर ज़मींदार सबल सिंह और कंचन सिंह को आत्महत्या से बचा लेता है। ज़मींदार की पत्नी आत्महत्या कर लेती है। योगी नदी में डूबकर प्राण त्याग देता है। सम्पत्ति को सारी बुराइयों की की जड़ मानकर ज़मींदार सबल सिंह सम्पत्ति किसानों में बाँट देते हैं। राजभवन को धर्मशाला बना देते हैं। एकमात्र पुत्र अचल सिंह को गुरुकुल पढ़ने भेज देते हैं, और स्वयं तीर्थाटन पर निकल पड़ते हैं। राजेश्वरी को गाँव वाले देवी मानकर पूजने लगते हैं। इस प्रकार मधुवन एक आदर्श गाँव बन जाता है।

संग्राम का कथानक आद्योपान्त जिज्ञासा बनाए रखने में सक्षम है। अनेक घटना प्रसंगों से कौतूहल बनाए रखने में सक्षम कथावस्तु को प्रेमचंद ने पाँच अंकों और 39 दृश्यों में सुनियोजित किया है। कथानक काल्पनिक है, पर प्रेमचंद ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है, मानों प्रत्यक्ष देखी गयी घटनाओं को ही नाटक का रूप दे दिया गया है, पर कथा को रोचक बनाने की दृष्टि से दो प्रासंगिक कथ्य भी हैं। गुलाबो, उसके पुत्र भृगुनाथ और बहू चम्पा के माध्यम से सास-बहू के झगड़ों और घरेलू परिवेश को मनोहारी रूप में प्रस्तुत किया गया है, तथा योगी

चेतनदास की प्रेमलीला साधु-संन्यासियों के कपटाचार, भ्रष्टाचार और ढोंगी आचरण को अभिव्यक्ति देती है।

ग्राम्य-जीवन से सम्बद्ध होने के कारण संग्राम के पात्र किसान, ज़मींदार आदि ही केन्द्रीय पात्र हैं। हलधर किसान नायक है और उसकी पत्नी राजेश्वरी नायिका। ज़मींदार सबल सिंह राजेश्वरी के प्रति कामासक्त होना और राजेश्वरी का उसके भाई कंचनसिंह से मिलकर ज़मींदार के विनाश के लिए षडयंत्र रचना उसके महत्त्व को रेखांकित करते हैं। कथानक को रोचक मोड़ देने के लिए योगी चेतनदास, महाराजिन गुलाबो, भृगुनाथ, चंपा, सलोनी, थानेदार, सिपाही आदि अनेक पात्रों का सृजन किया गया है। ये पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के साथ ही निजी विशेषताओं से भी समृद्ध हैं। अपने विविधवर्णी चरित्र से ये कथानक के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

'संग्राम' की सर्जना के लगभग दो वर्ष बाद उन्होंने 'कर्बला' नामक नाटक लिखा। यह नवम्बर 1924 में प्रकाशित हुआ। उन दिनों स्वदेश एक ओर आज़ादी की लड़ाई लड़ रहा था, दूसरी ओर हिन्दू-मुसलमानों के मध्य साम्प्रदायिक विद्वेष फैल रहा था। हिन्दू-मुस्लिम एकता को ध्यान में रखकर ही उन्होंने 'कर्बला' का सृजन किया। उन्हें लगा कि 'कर्बला' हिन्दू-मुसलमानों में एक्य की स्थापना में सहायक हो सकता है। 'कर्बला' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित राजनीतिक नाटक है। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार इस्लाम की स्थापना हज़रत मुहम्मद साहब ने की थी। उनके बाद खलीफा बनाना चाहिए था उनके दामाद और चचेरे भाई हजरत अली को, लेकिन बने क्रमशः हज़रत उमर, अबूबक और उस्मान। उस्मान के अत्याचारों से क्षुब्ध प्रजा ने उनकी हत्या कर दी, तो चौथे खलीफा बने हज़रत अली। उस्मान के रिश्तेदार मुआबिया ने अली को खलीफा स्वीकार न करके विद्रोह किया। पाँच वर्ष तक युद्ध चला। कूटनीति विशारद योद्धा मुआबिया जीता, क्योंकि उसने घोषणा कर दी थी कि वह अगला खलीफा अपने पुत्र को न बनाकर अली के ज्येष्ठ पुत्र हसन को बनाएगा। दुर्भाग्य से हसन की मृत्यु हो गयी। तब अपना मृत्युकाल निकट जानकर उसने अपने बेटे यजीद को खलीफा घोषित कर दिया। हसन के छोटे भाई ने स्वयं को खलीफा बनने का अधिकारी मानकर यजीद का विरोध किया। 'कर्बला' नाटक की कथावस्तु यहीं से प्रारंभ होती है। 'कर्बला' का कथानक संक्षिप्त एवं सुपरिचित है। यजीद अत्याचारी शासक है। अरब के एक गाँव में विशाल मंदिर है, यहा राजा साहसराय और भाई बंधु आश्रम में रहकर पूजापाठ करते हैं। अत्याचारी यजीद से युद्ध करने के लिए हजरत हुसैन ने कर्बला के मैदान में डेरा डाला हुआ है। उनके अनेक साथी यजीद से मिल गये हैं। यजीद के 20-25 हजार सैनिकों ने हुसैन के निरीह 72 परिजनों को घेर रखा है। हुसैन के अनेक परिजन और साथी भी मारे जाते हैं। यहाँ तक कि हुसैन की ओर से लड़ते हुए साहसराय और उनके भाई बंधु भी मारे जाते हैं। हुसैन का सिर भी काट लिया जाता है। औरतों-बच्चों के करुण चीत्कार से फौज के सैनिक भी रो पड़ते हैं। कथानक के अनुरूप 'कर्बला' के पात्र ऐतिहासिक और मुसलमान हैं। पुरुष पात्रों में हजरत हुसैन, अब्बास, यजीद, जुबेर, शानी, मुआबिया, साहसराय आदि प्रमुख पुरुष पात्र और शहरबानू, जैनब, सकीना, हिदा, नसीमा, नरगिस आदि नारी पात्र हैं। 'कर्बला' के सम्वाद सरल, प्रवाहपूर्ण, पात्रानुकूल, मार्मिक और प्रभावशाली हैं। वे कथाविस्तार में सहायक, घटनाक्रम को प्रकाशित करने वाले, पात्रों के चरित्र का उद्घाटन करने वाले और स्वाभाविक हैं। प्रेमचंद ने ऐतिसाहिक वातावरण को जीवंत करने की भरपूर चेष्टा की है। इस सम्बन्ध में दृश्यविधान, संवादयोजना, चरित्रों की मनोवृत्ति का प्रकाशन आदि अनेक बातों का आश्रय लिया है। नाटक में गीत-संगीत की व्यवस्था काव्यशास्त्र-संगत है। कर्बला में बीस गीत हैं, जो अस्वाभाविक लगते हैं। इन 20 गीतों में से 7 गीत हुसैन ने, तीन नसीमा ने, दो नर्तकियों ने और शेष जैनब, शाद आदि ने गाये हैं। कहीं-कहीं दो चार बंध अनीस के मर्सियों के भी प्रस्तुत किये गये हैं। कहीं-कहीं वार्तालाप भी शेरो-शायरी में प्रस्तुत हुआ है। प्रायः सभी पात्र और प्रसंग के अनुकूल हैं।

प्रेमचंद का तीसरा नाटक 'प्रेम की वेदी' अत्यन्त लघु आकार का नाटक है। इसमें एक अंक और आठ दृश्य हैं। अतः कुछ विद्वान इसे एकांकी मानते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से इसे रूपक की प्रहसन कोटि की नाट्यकृति माना जा सकता है। यह एकांकी का एक प्रकार है। 'प्रेम की वेदी' का कथानक अत्यन्त रोचक, प्रासंगिक और प्रभावशाली है। विधवा मिसेज गार्डन चाहती है कि जेनी सजातीय युवक विलियम से शादी कर ले पर वह विवाह को पुरुष की गुलामी का पट्टा कहकर अस्वीकार कर देती है। मिसेज गार्डन विलियम से आग्रह करती हैं कि वह नाच-गाना, टेनिस खेलना आदि सीखकर जेनी को आकर्षित कर विवाह का प्रस्ताव रखे। उधर जेनी अपनी माँ से कहती है कि वह उसकी सहेली उमा के पति योगराज के प्रति आकर्षित है, उसने 1000 रुपये मासिक की नौकरी भी दी है, और यदि वह उमा का पति न होता तो उसे पति बनाने का प्रयत्न करती। विलियम सुयोग्य और सुदर्शन बनने के प्रयत्न में मूँछें काटकर आता है और मिसेज डगलस तथा मिस डासन का पत्र दिखलाता है कि वह सुयोग्य वर है, पर जेनी उसे हिजड़ा घोषित कर कहती है कि तुम्हारे लिए तो मेरी मेहतरानी ही सही पत्नी बन सकती है। उमा एक वर्ष में ही तीन बार गर्भवती होने और गर्भपात कराने से बीमार होकर मर जाती है, तो योगराज उमा के आभूषण जेनी को पहनाकर उसे उमा पुकारने लगता है। वह धर्म-परिवर्तन कर उससे विवाह का प्रस्ताव करता है, पर वह अस्वीकार कर देती है। मिसेज गार्डन जब बार-बार उकसाती हैं कि जेनी से विवाह का प्रयास करे तो विलियम उसी से प्रस्ताव कर देता है, जिसे वह स्वीकार कर लेती है। जब जेनी को पता चलता है कि माँ ने शादी कर ली, तो वह बताती है कि उसे धर्म की बाधा नहीं थी, योगराज ईसाई बन सकता था, मैं स्वयं शुद्ध हिन्दू बन सकती थी, डर केवल तुम्हारा था। अब हिन्दू विधिविधान से योगराज से शादी करूँगी। तभी योगराज की तड़प-तड़प कर मर जाने की सूचना आती है। जेनी विक्षिप्त हो जाती है। 'प्रेम की वेदी' शीर्षक सरल, सार्थक और प्रतीकात्मक है। शीर्षक प्रतीकात्मक इसलिए है कि प्रेम की वेदी ही एक ऐसी वेदी है जिस पर प्रेमी का तन-मन-धन अर्थात् सर्वस्व न्योछावर हो जाता है। इसी वेदी पर योगराज का बलिदान हुआ, और इसी वेदी पर जेनी सर्वस्व न्योछावर करने का संकल्प लेती है। इस नाटक के प्रमुख पात्र मिसेज गार्डेन डगलस, मिस डासन, लेडी डाक्टर, विलयम, योगराज आदि हैं। सभी पात्रों का चरित्रांकन यथार्थ के धरातल पर हुआ है। अपने चरित्र की सबलता और दुर्बलता दोनों के साथ वे हमें प्रभावित करते हैं। प्रेम की वेदी के संवाद सरल, सरस, छोटे-छोटे और पात्रानुकूल हैं। ये संवाद घटना-विस्तार, पात्रों के चरित्रोद्घाटन में सहायक और रोचक हैं। कहीं-कहीं पर अंग्रेजी के संवादों का प्रयोग भी किया गया है।

संवाद नाटक के प्राण होते हैं। प्रेमचंद ने संवादों के माध्यम से पात्रों के चरित्र-विकास के साथ-साथ हास्य और मनोरंजन प्रधान घटनाओं की प्रस्तुति भी सफलतापूर्वक की है। उनके नाटकों के संवाद सरल, पात्रानुकूल और सार्थक हैं। वे कहीं-कहीं छोटे हैं तो कहीं-कहीं बड़े-बडे भी हैं। 'संग्राम' में तो दो-दो पृष्ठों तक के संवाद भी हैं। ये संवाद कार्य-संपादन और पात्रों के चरित्र-विकास में सहायक हैं। सामान्य धारणा है कि संवाद लम्बे नहीं होने चाहिए, और लेखक को स्वगत-कथन से बचना चाहिए। पर, प्रेमचंद ने प्रायः तीनों नाटकों में स्वगत-कथन का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है, 'संग्राम' का एक उदाहरण देखिए—

"राजेश्वरी(मन में)—मैं इनसे कौशल करना चाहती थी, पर न जाने इनकी सुनकर क्यों हृदय पुलकित हो रहा है। एक-एक शब्द मेरे हृदय में चुभ जाता है। (प्रकट) एक दिन मजूरी करने वाली स्त्री से ऐसी बातें करके उसका सिर आसमान पर मत चढ़ाइए।

चंपा (आप-ही-आप)—सिर में ज़रा-सी चोट लगी, तो क्या, कान की बालियाँ तो बच गयीं।"

नाटकों की भाषा अत्यन्त सरल और व्यावहारिक हिन्दी है। प्रेमचंद ने गीत-संगीत का आश्रय भी लिया है, क्योंकि पंत, प्रसाद जैसे कवि-नाटककार इसे आवश्यक मानते थे।

संभवतः ऐसी मान्यता के अनुरूप ही प्रेमचंद ने 'संग्राम' में 18 और 'कर्बला' में 20 गीत रख दिये हैं। संभवतः कुछ गीत या पंक्तियाँ प्रेमचंद की स्वरचित भी हो सकती हैं, पर वे अपने गीत-विधान में सफल नहीं हो सके। लेकिन उनके नाटक अपनी उद्देश्यपूर्ति में सफल है। उन्होंने नाट्यशिल्प का पूर्ण परिपालन किया है, और पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि अनेक समस्याओं का यथार्थ की भूमि पर आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत किया है।

मंचन की दृष्टि से 'संग्राम' और 'कर्बला' को मंचित करना अपेक्षाकृत कठिन है क्योंकि मंचन के लिए दोनों नाटकों में समुचित व्यवस्था और यत्किंचित् परिवर्तन करने पड़ेंगे जबकि 'प्रेम की वेदी' को सहजता के साथ मंचित किया जा सकता है। लेकिन पठनीयता की दृष्टि से 'संग्राम' और 'कर्बला' पाठकों के मानस पर मंचित होने की क्षमता रखते हैं।

मुंशी प्रेमचन्द प्रगतिशील कथाकार थे। वे सोद्देश्य-सृजन के पक्षधर थे। विवेकशील मनुष्य में साहित्य के अध्ययन से संवेदना, विश्लेषण-क्षमता, उचित-अनुचित का बोध और सन्मार्ग प्रशस्त होता है। प्रेमचंद मूलतः कथाकार थे। वे जानते हैं कि नाटक उनकी विधा नहीं है। वे मानते थे कि नाटक तभी सफल हो सकता है, जब लेखक को नाट्यशिल्प की समुचित जानकारी हो, और गीत-संगीत के क्षेत्र में सम्यक् अधिकार हो। वह यह भी जानते थे कि कथासाहित्य से अधिक व्यापक प्रभाव नाटक का होता है और नाटक का आनन्द शिक्षित, अशिक्षित और अल्पशिक्षित जन भी उठा सकते हैं। प्रेमचंद के नाटक इस बात के परिचायक हैं कि उनका आदर्श यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखित उनके ये नाटक उन्हें युगद्रष्टा निरूपित करते हैं। दुख की बात है कि साहित्य जगत् ने प्रेमचंद के नाट्य साहित्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखा। एकबार पुनः प्रेमचंद के नाटकों की समुचित समीक्षा और अध्ययन की आवश्यकता है जिससे प्रेमचंद के युगद्रष्टा रूप को लोग जान सकें।

स्त्री के प्रति अपराध रुकते क्यों नहीं

शीला पांडे
बाल साहित्यकार, कवि एवं लेखक
लखनऊ, उत्तर प्रदेश

स्त्री से सम्बन्धित दो मामले अभी शीघ्र ही ऐसे घटित हुए हैँ जो पुरुष का निजी और सामूहिक दोनोंविकृत रूप प्रस्तुत करते हैँ -
पहला -एक पति ने अपनी पत्नी को मतभेद होने पर कुल तीन बार तेजाब पिलाया। दो बार बच गयी और तीसरी बार मर गयी।
दूसरा -एक तेरह साल की बच्ची से तीस दरिंदे मिलकर बलात्कार करते हैँ और अंततः वह मर जाती है।
सवाल यह है कि स्त्री के प्रति इतना क्रूर और हिंसक विचार इनके मन में आया कैसे ?
फिर इतना दुस्साहस भी कहां से और किनके बलबूते पर आया ? कहाँ से शुरुआत करूँ ? चलिए शुरु से शुरू करते हैँ। स्त्री और पुरुष सृष्टि के दो मूल मानवीय घटक हैं। ये एक-दूसरे के पूरक भी हैं और एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी भी। सृष्टि में मानव को ही श्रेष्ठतम माना गया है क्योंकि मानव के पास बुद्धि है और वह पृथ्वी के सभी प्राणियों को अपनी बुद्धि से संचालित कर सकता है उन पर वर्चस्व स्थापित कर सकता है।

केवल 'वर्चस्व' के सन्दर्भ में बात करें तो मानव तो पृथ्वी पर दो रूपों में विभक्त हो कर आया है स्त्री और पुरुष! अब इनमें से किसका वर्चस्व स्थापित हो? दो रूपों में जन्म इसीलिए हुआ था कि वो एक-दूसरे के पूरक बनकर रहेंगे। दोनों को पूर्ण रूप से एक-दूसरे की अनिवार्यता होगी! मानव के घटकों ने एक-दूसरे की अनिवार्यता तो स्वाकारी लेकिन मानव के एक घटक ने अपनी बुद्धि का उपयोग दूसरे घटक पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए, भी किया क्योंकि उसका दूसरा घटक उसी के जैसा बुद्धिमान और सामर्थ्यवान था अतः सारी प्रतिस्पर्धा भी इसी से थी और सारी असुरक्षा भी।

ईश्वर तो पृथ्वी पर राज करने आयेगा नही? अतः मानव के इन्हीं दो घटकों के बीच सत्ता स्थापित होनी थी। सृष्टि का सृजन निरंतर बनाये रखने और परिष्कृत करते रहने के लिए यह मानव जाति पृथ्वी पर आयी थी। मानव जाति का एक घटक अर्थात स्त्री तो निरंतर इस सृजन को फलीभूत करने में दृढ़ प्रतिज्ञ हो सृष्टि के प्रति निष्ठारत रही लेकिन दूसरा, पुरुष घटक अपने मार्ग से विचलित हो गया। वह केवल सृष्टि-सृजन के प्रति निष्ठावान नहीं रह गया। वह सृजन के प्रति अपनी निष्ठा का परित्याग करने लगा। प्रतिघात करते हुए दूसरे घटक द्वारा निभाये गये सृजन के मार्ग और प्रतिफल पर अपना वर्चस्व आरोपित करने लगा। जहा स्त्री का मार्ग श्रम, सृजन और दायित्व-निष्ठा का था, वहीं पुरुष का मार्ग यह भी था, कि कैसे इन सब पर अपना आधिपत्य जमा लिया जाये? अपने अधिकारों का विस्तार करना।

आधिपत्य इस सीमा तक जमाना कि अन्ततः स्त्री पर भी आधिपत्य !! कहना न होगा कि पुरुष स्त्री को सत्ता का हिस्सेदार भी नहीं बनाना चाहता था। धीरे-धीरे, सत्ता का हिस्सेदार तो दूर! वह उसे अपने बराबर भी नहीं समझता था। आखिर तक आते-आते अब पुरुष ने स्त्री को इंसान समझना भी छोड़ दिया है। उसके प्रति कोई सम्मान, कोई संवेदना दिखाई नही देती। जो दिखता है सब ऊपरी दिखावे हैं।

आकड़े गिना कर, या उदाहरण देकर जिन्हें सिद्ध करने की कोशिश की जाती है वो या तो नारी ने स्वयं अर्जित किये हैं या फिर किसी स्वार्थवश, विवशता वश, या अपनी किसी आवश्यकता पूर्ति हेतु पुरुष ने वह अवसर स्त्री को मुहैया कराया है या उसका लाभ उसे उठाने दिया है। स्त्री की इस स्थिति के पीछे दो महत्वपूर्ण कारण हैं -

एक तो समाज के हर स्तर में प्रत्येक परिप्रेक्ष्य से ऐसे सामाजिक, धार्मिक और पारम्परिक नियम बनाये गये हैं, उन्हें स्त्री द्वारा अनुकरण करवाये गये हैं कि स्त्री को श्रमिक और गुलाम की तरह उपयोग में लाया जा सके। उसकी भावुकता, संवेदनशीलता और उदार भावनाओं का जहा° उपयोग किया जा सके, वहीं उसकी प्रखरता को नष्ट भी किया जा सके अर्थात सिर्फ ऐसे कार्यों के निस्पादन में संलिप्त रखा जाए जिसमें उत्पादकता शून्य हो। स्त्री के विस्तार की सीमायें सूक्ष्म हों और उनकी इन्द्रियाँ भी पराधीन रहें। इसके लिए अचूक सत्ता स्थापित करने की आवश्यकता थी। पुरुषों ने 'शारीरिक बल' को सत्ता स्थापन की कसौटी बनाया क्योंकि मात्र एक यह ऐसा बल है जिसमें पुरुष स्वयं को सक्षम होने की अनुभूति करता था। स्त्रियों के भावुक और उदारमना प्रकृति ने इसमें उन्हें सहयोग प्रदान किया। सत्ता के प्रति स्त्री की इसी उदासीनता (निश्च्छल सर्जक होने के नाते) ने पुरुषों को यह अवसर दिया कि वे स्वतन्त्र हो सत्ता स्थापन को स्थायी बनाने के अनेकानेक उपाय और युक्ति को इजाद कर सके। उन्होंने सबसे पहले स्थापन की मूल कसौटी 'शारीरिक बल' को अपने पक्ष में 'स्वीकार्यता' और दूसरे पक्ष में 'अस्वीकार्यता' को रचा। स्त्री को उन सभी आयामों में ढाला गया जिससे उसे अपने शारीरिक बल का आभास न होने पाये। इसके लिए उसे विभिन्न तरीकों से बांटा और बांधा गया। इसमें लिबास, आभूषण, इन्द्रियों को बांधना, शारीरिक सौन्दर्य का महिमामण्डन आदि स्थापित करना तथा त्याग के गुण को स्त्री के पक्ष में सर्वोपरि स्थान पर स्थापित किया जाना शामिल है।

सेवा भाव को सबसे बड़ा धर्म स्वीकार किया गया और स्त्री पर आरोपित कर उसे (सत्ता से विरत करने के मूल मन्त्र के तौर पर) मात्र उसके 'ममता' पक्ष को फलने-फूलने और स्वीकार करने के साथ, ममतामयी रूप मूर्ति को स्थापित किया गया जिससे इस ममता रूप की कमजोरियों का भी दोहन किया जा सके। स्त्री के बाकी किसी 'बल' को स्वीकार्यता नहीं मिली, अन्य पहचान भी नहीं बनी। संक्षिप्त रूप में कहें तो सत्ता की कसौटी 'शारीरिक बल' को स्त्री न तोड़ पाये, इसके लिए उसे उसकी इन्द्रियों के साथ शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक तथा पारिवारिक रूप से बंध और जकड़ गया। समानान्तर पुरुषों द्वारा स्वयं को प्रत्येक आयाम से आश्वस्त किया गया। स्त्रियों में असुरक्षा पैदा करने के लिए और उसके जीवन को भी असुरक्षित और अस्थायी बनाये रखने के लिए ही, स्त्री के जीवन के दो हिस्से कर दिये गये। जन्म कहीं और, जीवन कहीं और! इन दोनों हिस्सों को एक-दूसरे से अलग कर दिया गया। फिर दोनों हिस्सों को अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग लोगों के बीच बा°ट दिया गया। उक्त दोनों स्थानों पर, सिर्फ कर्त्तव्य और दायित्व निर्धारित किये गये, अधिकार शून्य रखा गया। एक हिस्से को ईश्वर ने खैरात में लड़की दी थी। उसने, दूसरे को लड़की खैरात में दे दी । दूसरे हिस्से ने अपने परिवार में इसे खैरात की तरह बांट दिया। खैरात में बन्टती स्त्री, खैराती जीवन को अपने कंधों पर ढोती है। जिसमें, स्त्री के विस्तार की सभी सीमायें पुरुष के घर की चौखट के भीतर ही दम तोड़ दें, इनके सारे विस्तार घर की चौखट को ही पुष्ट करें और 'हमारे अधीन ही अपनी सभी इच्छाएं, रुचियाँ और सृजनात्मकता को अंजाम दें।' फलीभूत सृजन और उत्पाद पर तथा सन्तान और सम्पत्ति पर भी मात्र पुरुष का ही अधिकार शेष विकल्प बचे! वैदिक काल में स्त्री की स्वतन्त्रता थोड़ी तभी मजबूत होती है जब समाज और देश नैतिक तथा चारित्रिक स्तर पर उत्कर्ष पर होते हैं। तब स्त्री समाज और देश में स्वयं सुरक्षित हो जाती है।

वैदिक समय में स्त्री की स्थिति काफी सुदृढ़ थी क्योंकि उसके पास शिक्षा थी, सुरक्षा थी स्वतन्त्रंता और अधिकार भी! (हो सकता है बराबरी तब भी न रही हो लेकिन सम्मान भरपूर था)। बाद के दिनों में यह सब कुछ नष्ट हो गया । समाज, धर्म ,अर्थ और सत्ता की सारी संरचनाओ ने मिलकर स्त्री गुलामी का ऐसा ताना- बाना बुना कि कुछ पुरुषों के लिए स्त्री इंसान भी नहीं है। वे इसे एक देह भर मानते हैँ स्त्री की देह और मन पर आधिपत्य उनका सामाजिक हक है । विचार और मन से शून्य मान ली गयी स्त्री खेलने की वस्तु भी मान ही ली जाएगी !! मनमानी रोकने के लिए पुरुषों द्वारा पुरुषों पर कोई प्रतिबंध सामूहिक तौर पर समाजिक, धर्मिक, अर्थिक, और सत्ता की संरचना, में नहीं ढाला गया है । जाहिर है सभी पुरुष ऐसे नहीं होते हैं लेकिन सभी पुरुषमिलकर कभी इनके खिलाफ विद्रोह भी नहीं करते हैँ । परोक्ष - अपरोक्ष रूप से बचाव ही करते हैँ । रुचि सिर्फ स्त्री के बारे में पर्सेप्शन बनाने में रहती है अपराधी का समूल नाश करने के लिए कोई उद्योग करते दिखाई नहीं देते। सच पूछो तो स्त्रियों के प्रति पूरी व्यवस्था क्रूर है ।

Sanjay Rai

चित्रकार, मऊ, उत्तर प्रदेश

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बालिका शिक्षा एवं महिला स्वावलंबन

आया समय उठो अब नारी|
युग निर्माण तुम्हे करना है||
आज़ादी की खुदी नींव में|
तुम्हे प्रगति पत्थर भरना है||
खुद को तुम कमज़ोर न समझो|
ताकत हो संपूर्ण जगत की|
तुम्हे नया इतिहास विश्व का,
अपने कदमों से लिखना है||

डॉ स्नेह सुधा
वरिष्ठ साहित्यकार
प्रवक्ता, माध्यमिक शिक्षा परिषद्
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

किसी भी राष्ट्र की प्रगति का वास्तविक आधार उसकी महिलाओं की शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता होती है। जब एक बालिका शिक्षित होती है, तो वह केवल स्वयं ही नहीं, बल्कि पूरे परिवार और समाज को शिक्षित एवं सशक्त बनाती है। वर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ", "समग्र शिक्षा अभियान", "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020", "सुकन्या समृद्धि योजना", "स्टैंड-अप इंडिया" तथा "राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन" जैसी अनेक योजनाओं के माध्यम से बालिका शिक्षा और महिला स्वावलंबन को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके बावजूद सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चुनौतियाँ आज भी इस दिशा में बाधक बनी हुई हैं। प्रस्तुत आलेख में वर्तमान परिस्थितियों में बालिका शिक्षा एवं महिला स्वावलंबन की दशा, चुनौतियों तथा भविष्य की दिशा का विश्लेषण किया गया है।

भारत की सांस्कृतिक परंपरा में नारी को शक्ति, ज्ञान और सृजन का प्रतीक माना गया है। वैदिक काल में गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषियों ने शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। समय के साथ सामाजिक कुरीतियों, लैंगिक असमानता तथा रूढ़िवादी सोच के कारण महिलाओं की स्थिति कमजोर होती गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान ने महिलाओं को समान अधिकार प्रदान किए तथा शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित किया। आज शिक्षा महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी माध्यम बन चुकी है। विगत वर्षों में बालिका शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। विद्यालयों में बालिकाओं के नामांकन में वृद्धि हुई है तथा उच्च शिक्षा में भी उनकी भागीदारी लगातार बढ़ रही है। डिजिटल शिक्षा, छात्रवृत्ति योजनाएँ, निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें, साइकिल एवं पोषण योजनाओं ने बालिकाओं को विद्यालय से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। फिर भी अनेक ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में बाल विवाह, गरीबी, लैंगिक भेदभाव, विद्यालयों की दूरी, सुरक्षित परिवहन का अभाव तथा डिजिटल संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ आज भी शिक्षा में बाधा उत्पन्न करती हैं। माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यालय छोड़ने वाली बालिकाओं की संख्या अभी भी चिंता का विषय है। शिक्षा महिलाओं को आर्थिक आत्मनिर्भरता की दिशा में अग्रसर करती है। आज महिलाएँ प्रशासन, शिक्षा, चिकित्सा, न्यायपालिका, विज्ञान, सेना, खेल, राजनीति, सूचना प्रौद्योगिकी तथा उद्यमिता जैसे क्षेत्रों में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर रही हैं। स्वयं सहायता समूह, स्टार्टअप संस्कृति, डिजिटल बैंकिंग, कौशल विकास कार्यक्रम तथा स्वरोजगार योजनाओं ने महिलाओं को रोजगार और उद्यमिता के नए अवसर प्रदान किए हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में भी महिलाएँ कृषि आधारित उद्योग, हस्तशिल्प, डेयरी, लघु उद्योग तथा ऑनलाइन व्यवसाय के माध्यम से आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं।

प्रमुख चुनौतियाँ:

* लैंगिक भेदभाव एवं सामाजिक रूढ़ियाँ।
* बाल विवाह एवं दहेज प्रथा।
* गरीबी तथा आर्थिक संसाधनों का अभाव।
* गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सीमित पहुँच।
* डिजिटल विभाजन एवं तकनीकी संसाधनों की कमी।
* कार्यस्थलों पर असमान वेतन एवं सुरक्षा संबंधी समस्याएँ।
* परिवार एवं समाज में निर्णय लेने की सीमित भूमिका।

भविष्य की दिशा

बालिका शिक्षा एवं महिला स्वावलंबन को सशक्त बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय आवश्यक हैं–

1. प्रत्येक बालिका को गुणवत्तापूर्ण एवं समावेशी शिक्षा उपलब्ध कराई जाए।
2. विद्यालयों में सुरक्षित एवं लैंगिक संवेदनशील वातावरण सुनिश्चित किया जाए।
3. डिजिटल शिक्षा एवं तकनीकी कौशल का व्यापक विस्तार किया जाए।
4. कौशल विकास, उद्यमिता तथा वित्तीय साक्षरता कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाए।
5. महिलाओं के लिए रोजगार एवं स्वरोजगार के अवसरों का विस्तार किया जाए।
6. सामाजिक जागरूकता अभियानों के माध्यम से लैंगिक समानता को प्रोत्साहित किया जाए।
7. नीति निर्माण एवं नेतृत्व के सभी स्तरों पर महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जाए।

बालिका शिक्षा और महिला स्वावलंबन एक-दूसरे के पूरक हैं।

शिक्षित महिला आत्मनिर्भर बनती है और आत्मनिर्भर महिला परिवार, समाज तथा राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है। विकसित भारत के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक बालिका को समान शिक्षा, समान अवसर तथा सुरक्षित वातावरण उपलब्ध कराया जाए। जब समाज बालिका शिक्षा को प्राथमिकता देगा और महिलाओं को आत्मनिर्भर बनने के अवसर प्रदान करेगा, तभी वास्तविक सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता तथा सतत विकास के लक्ष्य प्राप्त किए जा सकेंगे। अतः बालिका शिक्षा एवं महिला स्वावलंबन केवल सामाजिक आवश्यकता नहीं, बल्कि राष्ट्र निर्माण की अनिवार्य शर्त है।

चित् भूमियां

वि वे क मि श्रा

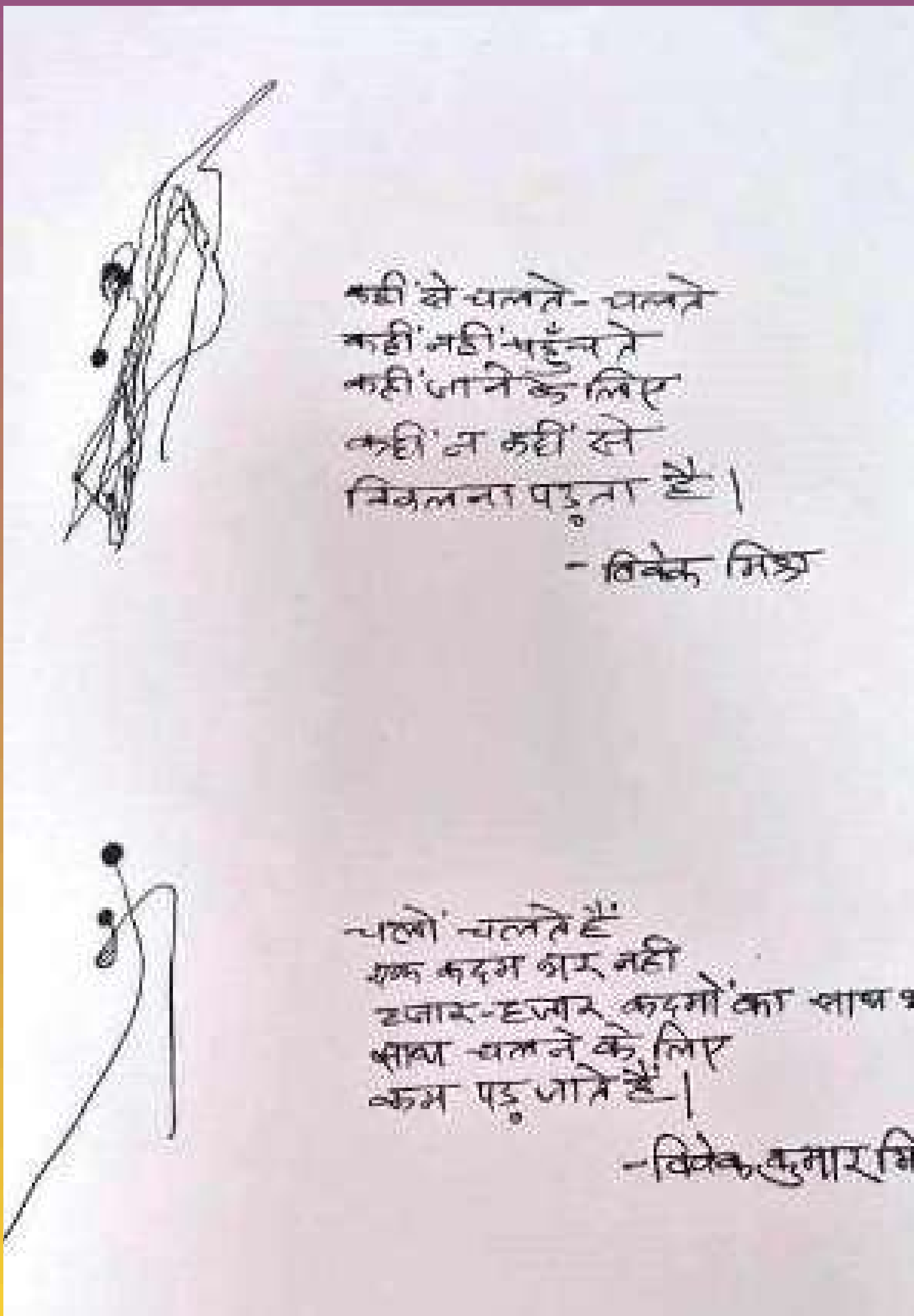

विवेक मिश्रा,
प्रसिद्ध लेखक, कवि
कोटा, राजस्थान

"प. राधेश्याम कथावाचक के सृजन में सम्वाद-सम्प्रेषण"

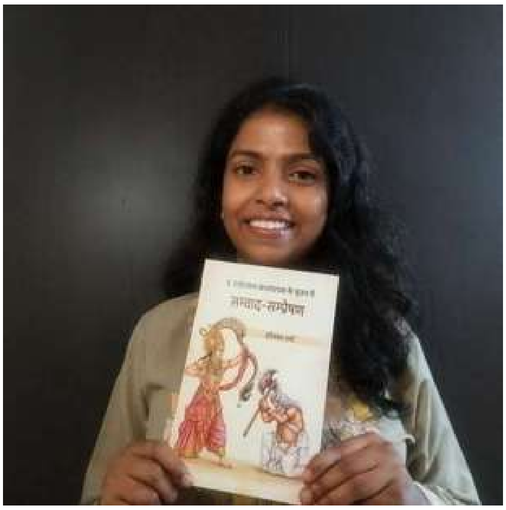

आरती चौरसिया

शोधार्थी, युवा समीक्षक
हिंदी विभाग,दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

राधेश्याम कथावाचक की रचनाओं और लोक साहित्य के विशेषज्ञ हरिशंकर शर्मा जी द्वारा संपादित उनकी नई पुस्तक प. राधेश्याम कथावाचक के सृजन में सम्वाद-सम्प्रेषण" प्रकाशित हुई है, जो वेरा प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित हुई है। शर्मा जी की यह पुस्तक राधेश्याम कथावाचक जी की रचनाओं में संवादों की संप्रेषणीयता पर केंद्रित है। जिसके अंतर्गत कथावाचक जी के नाट्य संवाद, एकांकी संवाद, अप्रकाशित नाटक और फिल्मी पटकथाओं के संवाद व रामायण के कथा सूत्र और संवाद को नए दृष्टिकोण से जांचते परखते हुए संवादों की संप्रेषणीयता को उजागर करती है। उनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि, किरदार और संवाद बताते हैं कि उनका लेखन मूल्य, संस्कार और जिम्मेदारी के इर्द-गिर्द है। वह पौराणिकता से आधुनिकता की यात्रा करते हैं।

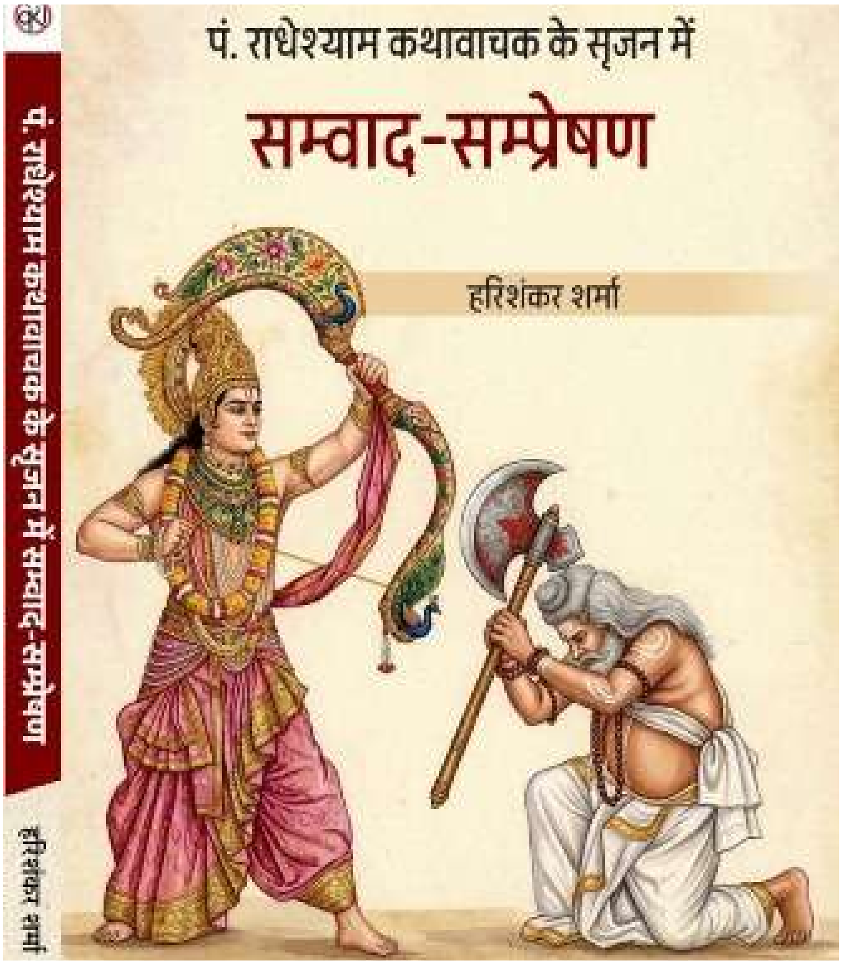

यह पुस्तक न केवल राधेश्याम कथावाचक की रचनात्मक प्रतिभा और उनके साहित्यिक योगदान को सामने लाती है, बल्कि उन्होंने किस प्रकार पारसी थिएटर की अश्लीलता और फूहड़पन जैसे हास-परिहास को परिवर्तित करके शिष्ट सभ्य 'पारसी हिन्दी रंगमंच' का जामा पहनाया जैसे नए पहलू को भी उजागर करती है। अर्थात् यह पुस्तक पारसी रंगमंच से होते हुए हिन्दी रंगमंच तक के उनके सफ़र की गहन पड़ताल भी करती है। पं. राधेश्याम कथावाचक ने सृजन के क्षेत्र में उस समय कदम रखा, जब समाज में आम जनता के बीच रामायण कृष्णलीलाओं का अभिनय, कथाओं का श्रवण, आल्हा, स्वाँग, ढोला-मारू, कठपुतली खेल, कबड्डी, बाईस्कोप, लोकगीत और मेला आदि प्रमुख मनोरंजन के साधन थे। आजीविका का मुख्य आधार कृषि और उससे जुड़े उद्योग थे। ग्रामीण संस्कृति ही उस समय जिंदगी का अभिन्न हिस्सा थी, और सादा जीवन और उच्च विचारों का

समाज में समादर था। इसी कारण कथावाचकजी कथोपकथन में शब्द प्रयोग के प्रति अत्यंत सचेत थे। उनके नाटकों के संवाद पात्रानुकूल हैं तथा उनमें जीवन की स्वाभाविकता का समावेश है। अर्थात् नाटक समाज से अलग नहीं रह सकता। यही वजह है कि उन्होंनें समयानुसार नए-नए तत्वों का समावेश किया है। उदाहरणस्वरूप उन्होंनें अपनी रचनाओं की प्रारंभिक अवस्था में जिन विभिन्न विधियों, रीतियों और प्रक्रियाओं का उपयोग किया, वे सभी बाद में 'राधेश्यामी छंद'(राधेश्याम नाम के तर्ज पर) नाम से प्रसिद्ध हुई। उनकी रामायण और नाटकों में शिल्प भावजगत की अभिव्यकि और अनुभूतियों रूपायन है। उनके साहित्य में अपना विशिष्ट शिल्प-विधान है। शिल्प के द्वारा ही उन्होंनें पौराणिक कथाओं के माध्यम से जन-जन को जोड़ा और इन चरित्रों को देश-प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना का आधार बनाया। उनके नाटकों में गद्य और पद्य दोनों का सुंदर संगम देखने को मिलता है वे लोक और शास्त्र दोनों के विशेषज्ञ थे। उनकी पुस्तकें और हस्तलिखित पांडुलिपियाँ केवल तथ्यों का संग्रह नहीं,बल्कि संपूर्ण चित्र हैं।

कथावाचकजी नाटककार, प्रकाशक, गीतकार, संगीतकार, सम्वादकार, मंच की बारीकियों के जानकार, अभिनय कला में पारंगत तथा निर्देशक- सभी कुछ थे। उनके रामायण लिखने के बाद वे जब नाट्य-दुनिया में सक्रिय हुए, तब वह दौर पारसी रंगमंच का था, और उस समय नाटकों का मुख्य उद्देश्य जनता का मनोरंजन और धन कमाना था। बौद्धिक वर्ग ने पारसी रंगमंच पर व्यावसायिकता का आरोप लगाकर इसे खारिज करने का प्रयास किया, लेकिन सम्वाद कहने की कला में माहिर कथावाचकजी ने धार्मिक कथाओं से आगे बढ़कर सामाजिक, राजनीतिक चेतना और स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि को अपने नाटकों में किसान, मजदूर, सूदखोर सेठ, धर्म, समाज और स्त्री जैसे विषयों में केंद्रित किया। अर्थात् उनके पौराणिक नाटकों को आधुनिकता की यात्रा के रूप में देखा जा सकता है। और इस तरह 1850 से शुरू होकर 1950 तक अबाध गति से चलने वाले इस पारसी रंगमंच में आगाहत्र कश्मीरी, पंडित नारायण प्रसाद बेताब और राधेश्याम कथावाचक प्रमुख स्तंभ थे।कथावाचक जी का लगभग 30 वर्ष तक न्यू अल्फ्रेड कंपनी से घनिष्ठ संबंध रहा। वे कंपनी के वेतनभोगी मुंशी पद पर कार्यरत थे, जहाँ मुंशी को सर्वेसर्वा माना जाता था। वहीं अपने समकालीन नाटककारों में उनका कद सबसे ऊँचा था। क्योंकि उनके नाटकों में भाषा, सम्वाद और समस्याओं की प्रस्तुति के स्तर पर निरंतर विकास हुआ। हर नाटक में युग के साथ उनकी चेतना बदली और नई घटनाएँ नई विषय-वस्तु के रूप में सामने आई। सम्वादों के साथ-साथ उनका नाट्य-स्वरूप भी बदला।कथावाचक जी सम्वाद कहने की कला में माहिर थे। दर्शक तक मूल भाव पहुँचाने के लिए वे गद्य में लिखे सम्वाद को कभी-कभी पद्य में भी प्रस्तुत कर देते थे। यह गुण 'देवर्षि नारद' नाटक के दक्ष सम्वाद में स्पष्ट दिखा जा सकता है- दक्ष : स्वागत पिताजी। भावना में ही डूबे रहते हैं। बुद्धिवाद को महत्व नहीं देते। भावना दूसरी वस्तु है और बुद्धिवाद दूसरी। संसार का कार्य बुद्धिवाद से चलता है, भावना से नहीं। संघर्ष आ जाए तो छल, बल और कूटनीति से भी काम निकालना चाहिए- यहीं चतुरता है। और यही समय की नीति है। भावना की नीति और इस नीति में धरती-आकाश का अंतर है-

जिस तरह हो काम करना चाहिए।
सृष्टिपति को सृष्टि रचना चाहिए।।
फिर अगर आ जाए बाधा सामने।
युक्ति द्वारा दूर करना चाहिए।।

पारसी रंगमंच में हाजिरजवाबी का बड़ा महत्व था, क्योंकि यह दर्शक को बौद्धिक तुष्टि देती थी। कथावाचकजी ने हाजिरजवाबी वाले अनेक सम्वाद अपने नाटकों में गढ़े हैं। 'मशूरिकी हूर' में सलामत खाँ और हमीदा का, 'महर्षि वाल्मीकि' में किशोरी वीर भद्र का तथा' द्रोपदी स्वयंवर' में अंगरपर्ण-अर्जुन का सम्वाद विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। पं. राधेश्याम कथावाचक की अप्रकाशित पांडुलिपि में पटकथा के स्वाद को समझने के लिए फिल्म 'सत्यदर्शन' के एक दृश्य को देख सकते है। इसमें रावण वेदवती के पास जाता है, जिससे उसकी तपस्या भंग हो जाती है।

यहाँ सम्वाद में हाजिरजवाबी के साथ गंभीरता भी है। इन सम्वाद में अभिनय सूत्र और निर्देशन की दृष्टि झलकती है। सम्वाद के माध्यम से पटकथा लेखन और निर्देशन की बारीकियों पर भी प्रकाश पड़ता है। इन सम्वादों में संस्कृत, हिन्दी और उर्दू के सहज मिश्रण से भाषा पर उनका अधिकार स्पष्ट दिखता है।

राधेश्याम कथावाचक ने पारसी रंगमंच की परंपरा को खड़ी बोली हिन्दी में नया रूप दिया। उनकी भाषा सरल और जनप्रिय थी, जिससे ग्रामीण और शहरी दोनों दर्शक आसानी से जुड़ सकें। उन्होंने लोकनाट्य और पारसी रंगमंच की शैली को मिलाकर संवाद, अभिनय और गायन का सुंदर संतुलन बनाया।अभिनय की दृष्टि से उनका कोई भी नाटक स्टेज पर कमजोर नहीं है। उन्होंने नाटकों में सौंदर्य-वृद्धि, नाटकीयता, संक्षितता, क्षिप्रता, कथा की स्पष्टता, कथा-विकास, उद्देश्य की अभिव्यक्ति, चरित्रगत विशेषताओं, पात्रों के अंतर्द्वंद्व, वाचिक अभिनय की पकड़, सरलता, सुलभता, आकर्षण, प्रासंगिकता और स्वाभाविकता जैसे गुणों को विशेष रूप से ध्यान में रखा। ये सारी विशेषताएँ 'भक्त प्रह्लाद' और 'ऊषा अनिरुद्ध' नाटकों में अद्वितीय रूप से दिखाई देती हैं। उन्होंने भाषा के स्तर पर कोई समझौता नहीं किया। वे थिएटर की भाषा का इस्तेमाल करते थे। नट-नटी के माध्यम से यह कथन उल्लेखनीय है-

नटी : तब तो नाटक की भाषा भी ब्रजभाषा ही रखनी होगी।

नट : यही तो चाहता हूँ, परंतु दर्शक पर अपने भावों का प्रभाव डालने के लिए वही भाषा काम में लानी चाहिए, जो इस समय बोलचाल की भाषा है। कारण यह है कि नाटक पाठ-काव्य नहीं, श्रव्य और दृश्य काव्य कहलाता है। शर्मा जी बताते है कि सम्वाद-भेद की दृष्टि से भारतीय नाट्यशास्त्र में सम्वाद के तीन भेद हैं- श्रव्य, दृश्य और नियत श्रव्य। पारसी रंगमंच से जुड़े होने के बावजूद उन्होंने भारतीय नाट्यशास्त्र का पालन किया है। कथावाचकजी ने ' श्रवण कुमार', 'वीर अभिमन्यु' आदि नाटकों में आकाशभाषित (आकाशवाणी) कथनों का भी प्रयोग किया है। 'श्रीकृष्णावतार' नाटक में कंस की मृत्यु की गूंजती वाणी इसका उदाहरण है। कथावाचकजी ने समन्वयात्मक शैली का अनुगमन किया। उन्होंने पारसी थिएटर को 'पारसी हिन्दी रंगमंच' नाम दिया और इसे नवीन धारा की ओर ले गए। उन्होंने नाटकों में भाषा-शैली, सम्वाद योजना, चरित्र-चित्रण, सांस्कृतिक उत्थान, राष्ट्रीय चेतना, समाज-सुधार तथा हिन्दी के प्रचार-प्रसार का चिंतन विकसित किया।

वस्तुतः कथावाचकजी का मूल पेशा कथावाचन था और नाटक उनका शौक। जयशंकर प्रसाद और कथावाचकजी के नाटकों का काल लगभग एक ही है। प्रसाद के नाटक अधिक रंगमंचीय साहित्य थे, जबकि कथावाचकजी के नाटक मुख्यतः रंगमंच अभिनय के लिए लिखे गए थे। अतः जयशंकर प्रसाद के नाटकों में पौराणिक तथा पारसी रंगमंच की तमाम प्रवृत्तियों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

तो वहीं दूसरी तरफ उन्होंने डायरी तथा अप्रकाशित नाटकों 'आजादी', 'उद्धार' और ' धन्ना भगत' (नाटक/फ़िल्म) को जीवन के अंतिम पड़ाव पर लिखा। उनके सम्वाद-शिल्प का विकास सन् 1920 से 1945 के मध्य विशेष रूप से देखने योग्य है। कथोपकथन में रोचकता, स्वाभाविकता और पात्रानुकूलता है।' मशरिकी हुर', 'वीर अभिमन्यु' तया 'परिवर्तन' नाटक के प्रेम-प्रसंगों के सम्वादों में कथावाचकजी की दृष्टि सबसे अधिक रमी है।

प्रायः आलोचक कथावाचकजी के नाटकों पर पौराणिक या सामंतवादी होने का आरोप लगाते रहे हैं, किंतु उनके नाटकों में निहित समाज-सुधार, देशभक्ति तथा ब्रिटिश सरकार के विरोधी स्वर, प्रगतिशीलता और वैचारिक गहराई पर वे मौन रह जाते हैं। किंतु हरिशंकर शर्मा जी इस मत का खंडन करते हुए कहते हैं कि उन्होंने धार्मिक पौराणिक आख्यानों के माध्यम से समय, समाज, देश की उन्नति और विदेशी शासन के विरुद्ध आजादी का संदेश किसी न किसी रूप में अपने नाटकों में अवश्य दिया है। 'वीर अभिमन्यु' के मंगलाचरण में उन्होंने बहुत कुछ कह दिया है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से भटके हुए समाज और देश को सही राह पर लाने का काम किया। वहीं उनकी 'भारतमाता' एकांकी तथा रामायण हिंदुस्तान का चलता-फिरता वाड्मय है।

इस प्रकार जन-जागृति के इस युग में नाटकों में एक नया नजरिया विकसित हुआ। आगाहत्र कश्मीरी जैसे नाटककारों को भी पं. राधेश्याम कथावाचक और नारायण प्रसाद बेताब की प्रवृत्ति की ओर झुकना पड़ा। उग्र विचारों वाले नाटकों पर सरकार की निगाह पड़ती थी और वे प्रतिबंध का शिकार होते थे, किंतु राधेश्याम कथावाचक की कथन-शैली की विचित्रता को सरकार का खुफिया विभाग नहीं समझ सका। अतः उनके नाटक और प्रेस को प्रतिबंध का दंश नहीं झेलना पड़ा।

अंततः पौराणिक नाटकों का इस युग की समूची चेतना को अभिव्यक्ति देने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पारसी रंगमंच के पौराणिक नाटक हों या साहित्यिक पौराणिक नाटक, दोनों में आधारभूत अंतर अवश्य है, किंतु विशेषकर राधेश्याम कथावाचक के नाटक मनोरंजन के साथ-साथ अतीत से आधुनिक भारत के अंतर को भी अनुभव कराते हैं।उन्होंने नाटक के उद्देश्य से नाटक नहीं लिखे। कंपनी की रीति-नीति को ध्यान में रखकर ही नाटक लिखे, बल्कि इन नाटकों में नाट्य तत्वों का भी निर्वाह पूरी निष्ठा से हुआ है।

निष्कर्ष के तौर कहे तो, शौकिया नाटककार जहाँ पश्चिमी नाटककारों से प्रेरणा ले रहे थे, वहीं पं. राधेश्याम कथावाचक पौराणिक नाटकों के गर्भ से भारतीयता का संदेश लेकर सामने आए। तो दूसरी तरफ पारसी रंगमंच के कसे हुए सम्वाद लगभग अपनी यात्रा के 150 वर्ष तक क्यों लोकप्रिय रहा? इसका जवाब हरिशंकर शर्मा जी अपनी इस पुस्तक के माध्यम से देते नज़र आते हैं कि उस समय दर्शक चार-पाँच घंटे तक नाटक देखता रहता था। इसका कारण था उनकी बोधगम्यता का गुण। उनका संगीत, काव्य भाव चमक रह-रहकर मन को बाँधे रखते थे, और यही गुणों के साथ कथावाचकजी के नाटकों का अपना वैशिष्ट्य है, जो उन्हें परंपरागत पारसी थिएटर और आधुनिक रंगमंच से अलग करता है। वे हरफनमौला नाटककार थे। उनका पूरा जीवन रंगमंच के मूल्यवान, सार्थक, जीवंत अनुभव को मूर्त करने के साथ-साथ कलात्मक सृजनात्मक उपलब्धि का भी साधन बना। उन्होंने नाटकों द्वारा भारत के सांस्कृतिक जीवन को अधिक संवेदनशील और समृद्ध बनाने में योगदान दिया। बल्कि नाटक जगत में उनकी अपनी पहचान है, और उनका अपना सनातनी व्यक्तित्व है।

अश्विनी तिवारी

नयी दिल्ली

झाल कोफ्ता

बंगाल की रसोई का व्यंजन झाल, बंगाली भाषा में मसालेदार और तीखा। कोफ्ता फारसी शब्द कोफ्तन से बना है जिसका अर्थ है पीसना। मुगल काल में ये भारत में आया जहाँ पर स्थानीय स्वाद के अनुसार विकसित हुआ। इस प्रकार झाल कोफ्ता भारतीय और फ़ारसी पाक परंपराओं का एक मिश्रित रूप है, जिसमें फ़ारसी कोफ्ते की अवधारणा और बंगाल की तीखी "झाल" शैली का संगम दिखाई देता है।झाल कोफ्ता किसी एक शाही रसोई में बना व्यंजन नहीं, बल्कि समय के साथ विकसित हुई एक क्षेत्रीय पाक शैली है।

बंगाल में सरसों, हरी मिर्च, लाल मिर्च और पंचफोरन जैसे मसालों से बनने वाली तीखी ग्रेवी को "झाल" कहा जाता है। जब कोफ्तों को इस तीखी बंगाली ग्रेवी में पकाया जाने लगा, तो इसे स्थानीय रूप से झाल कोफ्ता कहा जाने लगा। यह व्यंजन विशेष रूप से पश्चिम बंगाल की रसोई से जुड़ा माना जाता है।

सामग्री :

कोफ्ते के लिए :

2 उबले आलू

2 कप कद्दूकस की हुई लौकी (एक कप) गाजर

2 बड़े चम्मच बेसन या कॉर्नफ्लोर

1 छोटी चम्मच अदरक-हरी मिर्च का पेस्ट

½ छोटी चम्मच लाल मिर्च पाउडर

½ छोटी चम्मच हल्दी

नमक स्वादानुसार

तेल

झाल (तीखी) ग्रेवी के लिए

2 बड़े चम्मच सरसों का तेल

2 टमाटर का पेस्ट

1 प्याज बारीक कटा हुआ

1 बड़ा चम्मच अदरक-लहसुन का पेस्ट

2 हरी मिर्च

1 छोटी चम्मच सरसों का पेस्ट

½ छोटी चम्मच हल्दी

1 छोटी चम्मच लाल मिर्च पाउडर

½ छोटी चम्मच धनिया पाउडर

नमक स्वादानुसार

2 कप पानी

झाल कोफ्ता

बनाने की विधि

कोफ्ते तैयार करें

आलू, कद्दूकस की हुई लौकी, कद्दूकस किया हुवे गाजर बेसन, मसाले और नमक मिलाकर मिश्रण तैयार करें। छोटे-छोटे गोल कोफ्ते बना लें। मध्यम आँच पर सुनहरा होने तक तल लें। कड़ाही में सरसों का तेल गरम करें। प्याज को सुनहरा भूनें। अदरक-लहसुन का पेस्ट डालकर 1 मिनट भूनें। टमाटर का पेस्ट, हल्दी, लाल मिर्च, धनिया पाउडर और नमक डालकर तेल छोड़ने तक पकाएँ। सरसों का पेस्ट और हरी मिर्च डालकर 1–2 मिनट और पकाएँ।
पानी डालकर 5–7 मिनट उबालें।

अंतिम चरण

परोसने से ठीक पहले तले हुए कोफ्ते ग्रेवी में डालें। 2–3 मिनट धीमी आँच पर पकाएँ। हरे धनिए से सजाकर गरमा-गरम परोसें। झाल कोफ्ता गरम-गरम सादे चावल, जीरा राइस, लूची (पूरी) या तंदूरी रोटी के साथ सबसे स्वादिष्ट लगता है।

हरियाली

घनघोर घटा चहुंओर अब छा गई,
छम-छम कर नाचती देखो वर्षा आ गई।

पंछियों की डार भी पीहू-पीहू कर नाचने लग गई,
छाई थी जो काली बदरी वो पानी बन बरस गई।

बेरहम गर्मी जो सबके हाल बेहाल कर गई,
शीतल बूंदें बारिश की सुकून पहुंचाने आ गई।

बच्चों की टोलियाँ वर्षा में मस्ती करने निकल गई,
वो कागज की किश्तियां भी दूर तक निकल गई।

सूखा चारा खाते पशुओं में भी ऊब सी आ गई,
फिर हरी घास से उनके मनों में रौनक छा गई।

हर कली डाली मुस्कराते गीत खुशी के गा गई,
सबके जीवन में वर्षा से नवबहार सी छा गई।

मिट्टी के हर कण में नई उमंग सी छा गई,
देखो अब के वर्ष धरा पर फिर हरियाली छा गई।

राज कुमार कौंडल
बिलासपुर,
हिमांचल प्रदेश

ज़मीं का हिस्सा अभी तलक है
शजर पे पत्ता अभी तलक है

वो आके खिड़की लगा गई है
मगर वो लड़का अभी तलक है

अदालतों ने कहां वो माना
जो खूँ का धब्बा अभी तलक है

अभी भी दिखता हूँ रह तुम्हारा
कि तुमसे वादा अभी तलक है

ज़रा भी होगी कोई हक़ीक़त
मचा जो हल्ला अभी तलक है

कहां मैं आखिर मुकर गया हूं
मेरा वो कहना अभी तलक है

गुलों की ख़ुशबू चली गई है
ये क्या कि कांटा अभी तलक है

ये दिल के हर बोझ हट गए हैं
तुम्हारा बोला अभी तलक है

डॉ जिया उर रहमान जाफरी
नालंदा, बिहार

मोगरे के फूल

मोगरे के फूल
मुझे बिना पुकारे ही
अपनी ओर बुला लेते हैं
मोगरे के फूल।

इन चिर-परिचित राहों से
मैं न जाने कितनी बार गुज़रा हूँ,
किन्तु हर बार
इनकी भीनी सुगंध
मुझे मेरे ही भीतर
किसी भूले हुए आँगन तक ले जाती है।

डायरी के पीले पड़ चुके पन्नों पर
अब भी दर्ज हैं
कुछ अधूरे वाक्य,
कुछ अनकहे संवाद,
और अनगिनत भावों की धड़कनें।

उन्हीं पन्नों के बीच
दबे हैं मोगरे के कुछ सूखे फूल—
समय ने जिनका रंग छीन लिया,
पर उनकी स्मृतियों की सुगंध
आज भी अक्षुण्ण है।

जब भी डायरी खुलती है,
शब्दों से पहले
महक बोलने लगती है।
एक बीता हुआ समय
धीरे-धीरे वर्तमान में उतर आता है।

तब लगता है—
फूल केवल शाखों पर ही नहीं खिलते,
वे स्मृतियों में भी खिलते हैं;
वे समय से नहीं हारते,
वे प्रेम की तरह
लंबे समय तक
मन की तहों में महकते रहते हैं।

शायद इसी कारण
मुझे आज भी
सहज ही अपनी ओर खींच लेते हैं
मोगरे के फूल

घनश्याम कुमार 'पलामू'
युवा कवि एवं रचनाकार
पलामू, झारखंड

रही नाचती सांवरे
वंशी,धुन पर रोज।
मगर तुम्हारे मिलन की
हुई न पूरी खोज।।

मैं कैसे मीरा बनूं
हूं रसवंती नार।
प्रेम पियूं,मर-मर जियूं
मेरी प्रीत उधार।।

सहवासी है कामना
छुवूं,मनाऊं यार।
नाचूं लय पर सांस की
मैं नारी कचनार।।

थिरकन,चितवन,बांकपन
नैन-सैन के तीर।
रे जोगी अभिसारिनी
तुझ बिन बड़ी अधीर।।

डगमग पग,कंपत बदन
मन नित रहत मलीन।
एक नाम की रटन नें
कौन नशा दै दीन।।

सतीश चन्द्र श्रीवास्तव
रामपुर मथुरा, जिला सीतापुर
उत्तर प्रदेश

किसान की पुकार

भोर से पहले जाग उठता,
सपनों को फिर खेतों में बोता।
धूप, हवा और बारिश सहकर,
धरती से जीवन-गीत संजोता।
मेहनत उसकी सोना उगले,
फिर भी खाली रहती थाली।
बढ़ती लागत, घटते दामों से,
हर दिन होती नई बदहाली।
बादल रूठें, सूखा आए,
कभी बाढ़ सब बहा ले जाए।
ऋण का बोझ कंधों पर भारी,
फिर भी आशा दीप जलाए।
जिसके दम पर देश है चलता,
वही क्यों सबसे अधिक लाचार?
सम्मान, उचित मूल्य और सुविधा,
यही किसान का सच्चा अधिकार।
आओ मिलकर प्रण दोहराएँ,
अन्नदाता का मान बढ़ाएँ।
खुशहाल होगा जब किसान,
तभी सजेगा भारत महान।

सुजीत कुमार राय
मऊ,
उत्तर प्रदेश

कृतिका सिंह के कार्टून

कृतिका सिंह जी उभरती हुई कार्टूनिस्ट हैं, जीवन के विविध पक्षों पर आपके सीधे हस्तक्षेप करते कार्टून बहुत लोकप्रिय हैं, आप कृतिका जी को उनके फेसबुक पेज Kritika cartoonist https://www.facebook.com/cartoonistkritika?mibextid=ZbWKwL पर फॉलो भी कर सकते हैं

वीथिका ई पत्रिका :आपसे आपकी बात

वीथिका ई पत्रिका साहित्य, कला, संस्कृति और विज्ञान को समर्पित मासिक ई पत्रिका है. आप हमारे वेबसाइट www.vithika.org से पत्रिका डाउनलोड कर सकते हैं, व लेखों, रचनाओं पर हमें अपने विचार भी भेज सकते हैं. वीथिका ई पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, लेखक के अपने विचार हैं, इनसे या इनके विचारों से पत्रिका या पत्रिका की सम्पादकीय समिति किसी प्रकार की सहमति नहीं रखती.

हमें अपनी रचना या लेख भेजने के लिए आप उसे हिंदी भाषा में टाइप कर हमें जीमेल या whatsapp कर सकते हैं :

Gmail : vithikaportal@gmail.com
whatsapp: 8175800809